

३. पाठ संशोधनकेनियम

१. प्रस्तुत ग्रंथके पाठ-संशोधनमें ऊपर बतलाई हुई अमरावती, सहारनपुर, कारंजा और आराकी चार हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है। यद्यपि से सब प्रतियां एकही प्रतिकी प्रायः एक ही व्यक्तिद्वारा गत पंद्रह वर्षोंके भीतर की हुई नकलें हैं, तथापि उनसे पूर्वकी प्रति अलभ्य होनेकी अवस्थामें पाठ संशोधनमें इन चार प्रतियोंसे बहुत सहायता मिली है। कमसे कम उनके मिलानद्वारा भिन्न भिन्न प्रतियोंमें छूटे हुए भिन्न भिन्न पाठ, जो एक मात्रासे लगा कर लगभग सौ शब्दोंतक पाये जाते हैं, उपलब्ध हो गये और इस प्रकार कमसे कम उन सबकी उस एक आदर्श प्रतिका पाठ हमारे सामने आ गया। पाठका विचार करते समय सहारनपुरकी प्रति हमारे सामने नहीं थी, इस कारण उसका जितना उपयोग चाहिये उतना हम नहीं कर सके। केवल उसके जो पाठ-भेद अमरावतीकी हस्त-प्रति पर अंकित कर लिये गये थे, उन्हींसे लाभ उठाया गया है। जहां पर अन्य सब प्रतियोंसे इसका पाठ भिन्न पाया गया वहां इसीको प्रामाण्य दिया गया है। ऐसे स्थल परिशिष्टमें दी हुई प्रति-मिलानकी तालिकाके देखनेसे ज्ञात हो जावेंगे। प्रति-प्रामाण्यके विना पाठ-परिवर्तन केवल ऐसे ही स्थानोंपर किया गया है जहां वह विषय और व्याकरणको देखते हुये नितान्त आवश्यक जंचा। फिर भी वहां पर कमसे कम परिवर्तनद्वारा काम चलाया गया है।

२. जहां पर प्रतियोंके पाठ-मिलानमात्रसे शुद्ध पाठ नहीं मिल सका वहां पहले यह विचार किया गया है कि क्या कानडीसे नागरी लिपि करनेमें कोई दृष्टि-दोषजन्य भ्रम वहां संभव है ? ऐसे विचारद्वारा हम निम्न प्रकारके संशोधन कर सके -

(अ) प्राचीन कानडीमें प्राकृत लिखते समय अनुस्वार और वर्ण-द्वित्व-बोधक संकेत एक बिन्दु ही होता है, भेद केवल इतना है कि अनुस्वारका बिन्दु कुछ छोटा (o) और द्वित्वका कुछ बड़ा (O) होता है। फिर अनुस्वार का बिन्दु वर्णसे पश्चात् और द्वित्वका वर्णसे पूर्व रखा जाता है। अतएव लिपिकार द्वित्वको अनुस्वार और अनुस्वारको द्वित्व भी पढ सकता है। उदाहरणार्थ, प्रो० पाठकने अपने एक लेखमें* त्रिलोकसारकी कानडी ताडपत्र प्रति परसे कुछ नागरीमें गाथाएं उदधृत की हैं जिनमेंसे एक यहां देते हैं-

सो उ०म०गाहिमुहो चउ०मुहो सदरि-वास-परमाऊ ।

चालीस र०जओ जिदभूमि पु०छइ स-मंति-गणं ॥

इसका शुध्दरूप है -

सो उम्मग्गाहिमुहो चउम्मुहो सदरि-वास-परमाऊ ।

चालीस-रज्जओ जिदभूमि पुच्छइ स-मंति-गणं ॥

ऐसे भ्रमकी संभवता ध्यानमें रखकर निम्न प्रकारके पाठ सुधार लिये गये हैं -

(१) अनुस्वारके स्थान पर अगले वर्णका द्वित्व -

अंगं गिज्झा-अंगगिज्झा (पृ. ६) ; लक्खणं खइणो-लक्खणक्खइणो (पृ. १६)
संबंध-संबध्द (पृ. २६, २९४,) वंस-वस्स (पृ. १११) आदि ।

(२) द्वित्वके स्थानपर अनुस्वार -

भग्ग-भंग (पृ. ५०) अक्कुलेसर-अंकुलेसर (पृ. ७२) कक्ख-कंखा (पृ. ७४)

समिइवइस्सया दंतं-समिइवइं सया दंतं (पृ. ७) सव्वेयणी-संवेयणी (पृ. १०५)

ओरालिय ति ओरालियं ति (पृ. २९३) पावग्गालिय-पावं गालिय (पृ. ४९)

पडिमव्वा-पडिमं वा (पृ. ५९) इत्यादि ।

*Bhandarkar commemoration Vol., 1917, P.221.

(आ) कानडीमें द और ध प्रायः एकसे ही लिखे जाते हैं जिससे एक दूसरेमें भ्रम हो सकता है ।

द-ध, दरिद-धरिद (पृ. ३०) ध-द, ड्विध-ड्विदि (पृ. २१) हरधणु-हरदणु (पृ. २७५) इत्यादि ।

(इ) कानडीमें थ और ध में अन्तर केवल वर्णके मध्यमें एक बिंदुके रहने न रहनेका है, अतएव इनके लिखने पढ़नेमें भ्रान्ति हो सकती है । अतः कथं के स्थानपर कधं और इसको तथा पूर्वोक्त अनुस्वार द्वित्व-विभ्रमको ध्यानमें रखकर संबंधोवा के स्थान पर सव्वत्थोवा कर दिये गये हैं ।

यद्यपि शौरसेनीके नियमानुसार कथं आदिमें थ के स्थान पर ध ही रक्खा है, किन्तु जहां ध करनेसे किसी अन्य शब्दसे भ्रम होनेकी संभावना हुई वहां थ ही रहने दिया। उदाहरणार्थ- किसी किसी प्रतिमें 'गंथो' के स्थान पर 'गंधो' भी है किन्तु हमने 'गंथो' ही रक्खा है।

(ई) -ह्रस्व और दीर्घ स्वरोंमें बहुत व्यत्यय पाया जाता है, विशेषतः प्राकृत रूपोंमें। इसका कारण यही जान पडता है कि प्राचीन कानडी लिपिमें -ह्रस्व और दीर्घका कोई भेद ही नहीं किया जाता। अतः संशोधनमें -ह्रस्वत्व और दीर्घत्व व्याकरणके नियमानुसार रक्खा गया है।

(उ) प्राचीन कानडी ग्रंथोंमें बहुधा आदि ल के स्थान पर अ लिखा मिलता है जैसा कि प्रो. उपाध्येने परमात्मप्रकाशकी भूमिकामें (पृ. ८३ पर) कहा है। हमें भी पृ. ३२८ की अवतरण गाथा नं. १६९ में 'अहइ' के स्थान पर 'लहइ' करना पडा।

३. प्रतियोंमें न और ण के द्वित्वको छोडकर शेष पंचमाक्षरोंमें हलंत रूप नहीं पाये जाते।

किन्तु यहां

संशोधित संस्कृतमें पंचमाक्षर यथास्थान रक्खे गये हैं।

४. प और य में प्राचीन कानडी तथा वर्तमान नागरी लिपिमें बहुधा भ्रम पाया जाता है। यही बात हमारी प्रतियोंमें भी पाई गई। अतः संशोधनमें वे दोनों यथास्थान रक्खे गये हैं।

५. प्रतियोंमें ब और व का भेद नहीं दिखाई देता, सर्वत्र व ही दिखाई देता है। अतः संशोधनमें दोनों अक्षर यथास्थान रक्खे गये हैं। प्राकृतमें व या ब संस्कृतके वर्णानुसार रक्खा गया है।

६. 'अरिहंतः' संस्कृतमें अकारांतके रूपसे प्रतियोंमें पाया जाता है। हमने उसके स्थानपर संस्कृत नियमानुसार अरिहंता ही रक्खा है। (देखो, भाषा व व्याकरणका प्रकरण)

७. ग्रंथमें संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंका खूब उपयोग हुआ है, तथा प्रतियोंकी नकल करनेवाले संस्कृतके ही जानकर रहे हैं। अतएव बहुत स्थानोंपर प्राकृतके बीच संस्कृतके और संस्कृतके बीच प्राकृतके रूप आ गये हैं। ऐसे स्थानों पर शुद्ध करके उनके प्राकृत और संस्कृत रूप ही दिये गये हैं। जैसे, इदि-इति, वणं-वनं, गदि-गति, आदि।

८. प्रतियोंमें अवतरण गाथाएं प्रायः अनियमितरूपसे उक्तं च या उत्तं च कहकर उद्धृत की गई हैं। नियमकेलिये हमने सर्वत्र संस्कृत पाठके पश्चात् उक्तं च और प्राकृत पाठके पश्चात् उत्तं च रक्खा है।

९. प्रतियोंमें संधिके संबंधमें भी बहुत अनियम पाया जाता है। हमने व्याकरणके संधिसंबंधी नियमोंको ध्यानमें रखकर यथाशक्ति मूलके अनुसार ही पाठ रखनेका प्रयत्न किया है, किंतु जहां विराम चिन्ह आगया है वहां संधि अवश्य ही तोड़ दि गई है।

१०. प्रतियोंमें प्राकृत शब्दोंमें लुप्त व्यंजनोंके स्थानोंमें कहीं य श्रुति पाई जाती है और कहीं नहीं। हमने यह नियम पालनेका प्रयत्न किया है कि जहां आदर्श प्रतियोंमें अवशिष्ट स्वर ही हो वहां यदि संयोगी स्वर अ या आ हो तो य श्रुतिका उपयोग करना, नहीं तो य श्रुतिका उपयोग नहीं करना। प्रतियोंमें अधिकांश स्थानोंपर इसी नियमका प्रभाव पाया जाता है। पर ओ के साथ भी बहुत स्थानों पर य श्रुति मिलती है और ऊ अथवा ए के साथ क्वचित् ही, अन्य स्वरोंके साथ नहीं।

(१) ओ के साथ य श्रुतिके उदाहरण -

भणियो, जाणयो, विसारयो, पारयो, आदि।

(२) ऊके साथ-वज्जियूण

(३) ए के साथ-परिणयेण (परिणतेन) एक्कारसीये, आदीये, इत्यादी।